ॐ

कल्याण मन्दिर महामण्डल विधान

-: आशीर्वाद :-

अध्यात्म सरोवर के राजहंस

परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

-: रचयित्री :-

आर्यिका रत्न 105 श्री पूर्णमति माता जी

कृति	:	कल्याण मन्दिर महामण्डल विधान
आशीर्वाद	:	आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज
रचयित्री	:	आर्यिका रत्न 105 श्री पूर्णमति माताजी
मूल्य	:	रु. 160/- मात्र (पुनः प्रकाशन हेतु)
आवृत्ति	:	3000 प्रतियाँ, दिसम्बर 2020
प्राप्ति स्थल	:	• प्रबोध कुमार देवेन्द्र कुमार शाह वास्तु सलाहकार ई-2/14, अरेरा कॉलोनी, भोपाल फोन : 0755-2467952, 9303109613 • नितिन जैन 'विकास' भोपाल मो. 9425378736, 9981060692
प्रकाशक	:	विकास गोधा

कल्याणमंदिर स्तोत्र और उसके रचयिता

प्रस्तुत कल्याणमंदिर स्तोत्र कुमुदचन्द्राचार्य द्वारा रचित है। इसका वास्तविक नाम पार्श्वनाथ स्तोत्र है लेकिन स्तुति का प्रथम शब्द कल्याणमंदिर होने के कारण इसे 'कल्याणमंदिर स्तोत्र' कहा जाता है जैसे 'आदिनाथ स्तोत्र' को भक्तामर स्तोत्र कहते हैं। श्रीकुमुदचन्द्र महाराज का एक दूसरा नाम 'सिद्धसेन दिवाकर' भी मिलता है। काल की अपेक्षा से देखा जाए तो यह कृति वि.सं. 625 के करीब है अर्थात् छठवीं शताब्दी के करीब इनका काल है इनके बारे में कहा जाता है कि कुमुदचन्द्राचार्य बहुत बड़े विद्वान थे। जाति के ब्राह्मण थे,वैराग्य से दिगम्बर थे। एक दिन फूल खिला भीतर की आत्मा जगी, गुरु की चोट काम कर गई और उनकी जीवनधारा बदल गयी।

इस स्तोत्र की रचना के विषय में किंवदंती है कि-एक दिन ब्रह्ममुहूर्त की बेला में एक ब्राह्मण विद्वान अपनी लंबी चोटी में गाँठ लगाये नर्मदा के तट की ओर देह स्नान के लिए जा रहा था कि सामने से दिगम्बराचार्य आते दिखे तो ब्राह्मण ने अपने अहं स्वर में कहा-अरे! जरा दूर हट जा, क्या दिखाई नहीं देता कि नगर का ब्राह्मण विद्वान स्नान के लिये जा रहा है।आचार्य महाराज तो सम्यग्ज्ञानी थे इसलिए जानबूझ कर अनसुना कर ब्राह्मण से टकरा गये। ज्ञानी पुरुष की क्रियाएँ रहस्यमयी एवं अद्भुत हुआ करती हैं। पता नहीं कब किस रूप में करुणा का स्रोत्र जीवन की गंदगी को बहाकर ले जाये। हुआ यही आचार्य महाराज का स्पर्श होते ही ब्राह्मण झुँझला उठा। दोनों में विवाद प्रारंभ हो गया। ब्राह्मण वेद में पारंगत था, कुशल तार्किक वक्ता था,सहस्रों संस्कृत के श्लोक याद थे इसलिए अहंकार से भरकर कहा-'एको ब्रह्मा द्वितीयो नास्ति' आदि अनेकों श्लोक से अपने आपको विजयी बनाना चाहा। आचार्य महाराज शांत भाव से मात्र सुनते रहे अंत में व्यवहार धर्म का स्वरूप समझाया लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका। तब वहाँ से एक ग्वाला निकला तो ब्राह्मण ने उसे निर्णायक बनाया। ब्राह्मण ने अपना तर्क रखा-'ब्रह्मेव सत्यं जगन्मिथ्या आदि...।' बेचारा ग्वाला संस्कृत क्या जाने? एक भी शब्द समझ में नहीं आया। अब आचार्य महाराज ने सहज भाव से सरल शब्दों में कहा-देखो भाई! ये गायें तुम्हारी नहीं तुम्हारे मालिक की हैं। यदि ये गायें खो जायें तो तुम्हारा क्या

खोयेगा? मालिक का खोया है।इत्यादि व्यवहार की भाषा ग्वाले की समझ में आ गई तो उसने आचार्य महाराज के पक्ष में अपना निर्णय सुना दिया कि महाराज का कहना सही है। फिर भी ब्राह्मण संतुष्ट नहीं हुआ, उसने कहा-वो अनपढ़ क्या जाने उसका निर्णय हमें मान्य नहीं है और विवाद बढ़ते-बढ़ते राजा के पास पहुँचा। राजा ने भी दोनों पक्ष की बात सुनी। आचार्य महाराज का व्यवहारिकता का ठोस प्रमाण होने के कारण राजा ने भी आचार्य महाराज के पक्ष में निर्णय दिया। आचार्य महाराज ने राजा से निर्णय कराने के पूर्व शर्त रखी थी कि जो जीतेगा तो हारने वाले को उसका शिष्यत्व स्वीकारना होगा। शर्त के अनुसार ब्राह्मण को आचार्य महाराज का शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ा। धीरे-धीरे उनके ऊपर जैनत्व के संस्कार प्रगाढ़ होने लगे। ज्ञान तो था ही मात्र उसकी धारा बदल गई।

एक दिवस वो कुमुदचन्द्र ब्राह्मण राजकीय कार्य से चित्तौड़गढ़ गया। वहाँ मार्ग में एक पार्श्वनाथ मंदिर दिखा तो दर्शनार्थ मंदिर में चला गया। मंदिर में प्रवेश करते ही वहाँ के एक स्तंभ पर उसकी नजर पड़ी। उस स्तंभ की रचना कुछ भिन्न थी इसलिए गौर से देखा तो ऐसा लगा कि यह स्तंभ खुल सकता है उसे खोलने का प्रयास किया किंतु नहीं खुला फिर उसी पर एक जगह खोलने की विधि अंकित थी तो विधि के संकेतानुसार स्तंभ को खोल दिया। खुलते ही उसके अंदर एक चमत्कारिक शास्त्र देखा जो स्वर्णाक्षरों से लिखा था। एक पृष्ठ पढ़ा अच्छा लगा जैसे ही दूसरा पृष्ठ पलटाने का प्रयास किया कि आकाशवाणी हुई-कि आगे तुम्हारे भाग्य में नहीं है। ''साधु बनो फिर पढ़ो'' बस फिर क्या था भूमि में पड़े बीज को पानी मिल गया, अनुकूल मौसम मिल गया और संयास का अंकुर फूट गया वे मुनि बन गये।

एक दिन मुनिराज विहार करते हुए ओंकारेश्वर के मार्ग से जा रहे थे कि सामने से हाथी पर आरूढ़ सम्राट् विक्रमादित्य आ रहा था।राजा सर्वधर्म समभावी था इसलिए मुनिराज के ज्ञान की परीक्षा हेतु बिना हाथ जोड़े मात्र मन ही मन में नमस्कार कर लिया। बस, आत्मा की बात परमात्मा तक पहुँच गई और मुनिराज का हाथ अनायास आपोआप आशीर्वाद के लिए ऊपर उठा और 'धर्मवृद्धिरस्तु' के पावन शब्द मुख से निकले। इससे सम्राट् बहुत प्रभावित

हुआ। तब अन्य लोगों ने कहा-दिगम्बर मुनिराज में ऐसी क्या महिमा देखी जिससे आप प्रभावित हैं ? तब सम्राट् ने कहा-दिगम्बर मुनि बहुत महिमावंत और निष्परिग्रही होते हैं। यदि उनकी महिमा जानना चाहते हो तो परीक्षा करके देख लो। तभी आ. कुमुदचन्द्र महा. का ओंकारेश्वर में पहुँचना हुआ। महाकालेश्वर का प्रांगण जहाँ करोड़ों की संख्या में शैवभक्त बैठे थे, नाना प्रकार के वैदिक, योगिक चमत्कारों का गर्व करने वाले बड़े-बड़े मंत्रविद्, ज्योतिषविद् आचार्य महाराज की परीक्षा को आये थे। सबका अहंकार उछालें मार रहा था। सम्राट् ने आचार्य कुमुदचन्द्र महा. से कहा- अरे! आपने शिवप्रतिमा को नमस्कार नहीं किया? आपको नमस्कार करना होगा फिर बाद में आगे की चर्चा होगी। महाराज उठे और शिवप्रतिमा की ओर बढ़ने लगे, महाराज के दैदीप्यमान चेहरे के प्रभाव से शिवप्रतिमा निस्तेज पड़ने लगी। तभी एक शैवभक्त ने व्यंग में कहा- महाराज ! करिये न नमस्कार, देखें आपके आत्मवैभव का प्रभाव कितना है? बस इतना सुनना था कि आचार्य महाराज की आँखों में चित्तौड़गढ़ के मंदिर की पार्श्वनाथ भगवान की सौम्यमूर्ति,वही स्तंभ और चमत्कारी शास्त्र के पृष्ठ उस शिवप्रतिमा के स्थान पर दिखाई देने लगे और उनके मुख से भक्ति रस पूर्ण निम्न श्लोक निकल पड़ा-

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाःप्रति फलंति न भाव शून्याः॥

ज्यों ही प्रभु भक्ति के मधुर स्वर के साथ प्रभु को नमस्कार किया कि वह शिवप्रतिमा फट गयी और उसमें से पार्श्वनाथ भगवान की दैदीप्यमान प्रतिमा प्रगट हुयी। इस चमत्कार को देख समस्त विशाल जनसमूह मंत्रमुग्ध सा हो गया। सबकी नजर आचार्यश्री पर टिक गई। परिणाम यह हुआ कि राजा समेत उपस्थित सभी जनता इस अतिशय के कारण तत्काल समीचीन जैनधर्म की अनुयायी हो गयी।

अन्तर्भाव

प्रभु के अनुपम गुणों की महिमा एकाग्रमन से विचारना मानसिक भक्ति है **''गुणेषु अनुरागः भक्तिः''** वचनों से स्तुति करना वाचनिक भक्ति है और शीश झुकाना, हाथ जोड़ना आदि व्यवहारिक कायिक भक्ति है। इस प्रकार व्यक्त रूप जिन गुणों का चिन्तन करते-करते शक्ति रूप निज गुणों का चिन्तन कर उसकी गहराई तक उपयोग का स्थिर होना निश्चय भक्ति है। व्यवहार भक्ति कर्त्ता की महिमा गाते हुए **अध्यात्म योगी श्री कुन्दकुन्द आचार्य भी लिखते हैं-**

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त-गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्सलयं॥ 86॥ (प्र.सा.)

जो द्रव्य, गुण पर्यायों के द्वारा अर्हन्त देव को जानता है वह अपने को जानता है। अतः उसका मोह निश्चय ही नाश को प्राप्त होता है।

यदि क्रूर मोहराज से छुटकारा पाकर शिवपुर का राज्य पाना है तो- **''नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः''** अन्य कोई दूसरा मुक्ति को पाने का पन्थ नहीं है। **श्री समन्तभद्रस्वामी** ने भी कहा है-

देवाधिदेव चरणे, परिचरणं सर्व दुःख निर्हरणम्।
काम दुहि कामदाहिनी, परिचिनुया-दादृतो नित्यम्॥119॥ (र.क.श्रा.)

देवाधिदेव प्रभु के श्री चरण-कमल की जो विनयपूर्वक नित्य भक्ति करता है वह मनोवाञ्छित फल अवश्य पाता है, निर्भय होकर भवोदधि तैर जाता है। जैसे- सागर पार पहुँचने का इच्छुक मनुज नौकासीन होकर वायुवेग से प्रवाहमान हो जल उर्मियों को परास्त करते हुए उद्धत भँवरों से निर्भ्रम होकर सुन्दर प्रकृति की गोद में क्रीड़ा करते हुए अदम्य साहस के साथ किनारा पा ही लेता है, वैसे ही भक्ति-यान से भक्त भवसमुद्र का निर्बाध साहिल पा लेता है। कहा भी है-

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

भक्ति एक दिव्य मणि है जिसके प्रकाश से अन्तर का परमात्मा प्रकाशित होता है। भक्ति एक अद्भुत रसायन है जिसके सेवन से भगवत्ता पाने की शक्ति प्राप्त होती है। भक्ति एक सेतु है जिससे भगवत् पद तक पहुँचा जा सकता है। भक्ति एक ऐसा शस्त्र है जिससे कर्म बन्धन तत्क्षण ही तड़-तड़ टूट जाते हैं।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी कहते हैं- **''चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव**

निरोधनी'' प्रभु भक्ति सर्व कर्मास्रव की अवरोधक व संवर निर्जरा का संबल ले मुक्ति की परिशोधक है।

लौकिक गङ्गा में स्नान करने से यदि बाह्य विशुद्धि (तन शुद्धि) होती है तो भक्ति गङ्गा में स्नान करने से अभ्यन्तर विशुद्धि (चेतन शुद्धि) होती है। महाभारत में भी कहा है- ''**न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा**'' अर्थात् केवल जल से आत्म शुद्धि नहीं हो सकती, भक्ति नीर से ही कलुषित आत्मा प्रक्षालित होकर परिशुद्ध होती है।

अर्हत भक्ति तीर्थङ्कर प्रकृति की कारण है। **एकीभाव स्तोत्र** के कर्त्ता **आचार्य वादिराज महाराज** भक्ति करते हुए लिखते हैं-

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते, सत्यपि त्वय्यनीचा।
भक्तिर्नो चेदनवधिसुखा, वञ्चिका कुञ्चिकेयम्॥
शक्योद्घाटं भवति हि कथं, मुक्तिकामस्य पुंसो।
मुक्तिद्वारं परिदृढ़महा, मोहमुद्रा कवाटम्॥ 13॥

विशुद्ध ज्ञान व चारित्र होने पर भी यदि हे प्रभो! आपके प्रति निकांक्षित भक्ति रूपी कुन्जी पास में नहीं है तो वह मोक्ष द्वार पर लगे मोह रूप सुदृढ़ कपाट को कैसे खोल सकता है? इसीलिए गणधर, ऋषि, मुनि सभी प्रभु की भक्ति करते हैं। जैसे- **कुमुदचन्द्र स्वामी ने प्रभु पार्श्वनाथ** की स्तुति की तब उनके मुख-कमल से भक्ति-रस से भरा यह श्लोक प्रकट हो गया-

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन बान्धव! दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव शून्याः॥ 38॥

इस श्लोक को जब मैंने पढ़ा, मुझे लगा- ऐसा नहीं कि पूर्व भवों में मैंने प्रभु भक्ति नहीं की; अनेकों बार की, किन्तु भाव शून्य होकर की तो निष्फल हुई। अब पुनः मानव तन, जैनकुल, जिनेन्द्र प्रभु की समीपता, **आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज** की निकटता व भक्ति की रुचि उत्पन्न हुई है तो हृदय के साज पर धड़कन की सरगम द्वारा अन्तिम श्वास तक भक्ति करती रहूँ, यही भावना है। ''**यावन् निर्वाण- सम्प्राप्तिः**'' जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक सम्यक् श्रद्धा सहित भक्ति बनी ही रहे, उपयोग में वीतराग प्रभु के प्रति निष्ठा घनी रहे।

विश्वास है **आचार्य कुमुदचन्द्र स्वामी** द्वारा लिखित **''भक्तामर स्तोत्र''** के समकक्ष दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों आम्नाय में पढ़ी जाने वाली भक्तिरस पूरित, सर्व संकटहारक, आगत विघ्नविनाशक यह कृति सर्व भक्तजनों के पापास्रव का रोधन कर सातिशय पुण्यास्रव का कारण बनेगी।

इस विधान को 44 दिन में भी शान्ति से विशेष भक्ति के साथ पूर्ण कर सकते हैं। 22 दिन, 8 दिन या अपनी सुविधानुसार भी कर सकते हैं। ध्यान रखें, जितने दिन विधान करें प्रथम पंच कल्याणक तक की पूजन करें तदुपरान्त ही अर्घ्य चढ़ाएँ और अन्त में जयमाला अवश्य पढ़ें। **आचार्य श्री सोमसेन महाराज जी** द्वारा रचित ऋद्धि-मन्त्र के 44 श्लोक **''श्री भक्तामर महामण्डल विधान''** की भाँति यहाँ भी लिखे गए हैं। इस विधान में कुल 2448 बीजाक्षर मन्त्र के अर्घ्य हैं। यह अंक भी अखण्ड का द्योतक है - 2 + 4 + 4 + 8 = 18, 1 + 8 = 9 अखण्ड पद का प्रतीक 9 का पवित्र अंक आ जाता है अर्थात् इस विधान को पूर्ण श्रद्धा भक्ति से किया जाए तो कालसर्प ही क्या, कर्मरूपी सर्प का आतंक ही समाप्त हो प्राणी शीघ्र ही निष्कर्मा होकर लक्ष्यभूत शाश्वत सुख को पा लेता है। इसमें कल्याण मन्दिर श्लोक के प्रत्येक अक्षर को प्रारम्भ में या प्रथम शब्द में लिखने का प्रयास किया है, किन्तु छन्द भंग न हो इसलिए कदाचित् प्रथम चरण में तो यह शब्द आया ही है जिसे लाल वर्ण में अंकित किया गया है।

यह विधान अपने आपमें ही अतिशयकारी, मनवाञ्छित दातारी, संकटहारी, विघ्न हर्त्तारी है। कई सदी बीत जाने पर भी इस स्तोत्र का प्रभाव और महिमा घटी नहीं है, बल्कि निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। देश-विदेश सर्वत्र अनेकों भक्त इसका नियमित पाठ कर आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं। यह विश्वास है कि- सभी विधान कर्त्ताओं को सुखद संवेदन अवश्य होगा, यदि वे श्रद्धापूर्वक इस विधान को करेंगे। संघस्थ आर्यिकाओं एवं ब्रह्मचारिणी बहिनों ने मुझे इस स्तोत्र के 2448 चमत्कारिक बीजाक्षरों पर **''वृहद् भक्तामर मण्डल विधान''** की भाँति लिखने के लिए प्रेरित किया। मैंने तो सिर्फ गुरु-कृपा से जड़ लेखनी चलाई और बन गई सर्व भव्यजनों को आनन्ददायिनी यह कृति। विश्वास है दुनिया की आपाधापी से रुककर अपने शुभोपयोग को प्रभु-भक्ति में स्थिर करेंगे, तो प्रभुत्व को अवश्य पाएँगे। शिवपथगामी, भावीध्रुवधामी, दीक्षाप्रदाता, आत्मबोधदाता, जन-जन कल्याणक, सद्धर्मप्रकाशक **आचार्य भगवन् श्री विद्यासागर जी** गुरुवर्य के चरण-युगल में नमन कर उनकी कृपा-कृति उन्हीं के हस्तकमल पुट में समर्पित.....।

गुरुकृपा -पालिता

पूर्णमति

आमुख

पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन
रजवाँस, सागर (म०प्र०)

आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ने स्वयंभूस्तोत्र में स्तुति का स्वरूप कहा है। **गुणस्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्व कथास्तुति।**[1] विद्यमान अल्प गुणों का उल्लंघन कर उन गुणों की अधिकता का कथन करना स्तुति है, इसे पद्यात्मक कहने को स्तोत्र कहते हैं। **अर्हदादि-गुणानुरागो भक्तिः।**[2] अरिहन्तादिक के गुणों में प्रीति होना भक्ति है। **भावविशुद्धि-युक्तोऽनुरागो भक्तिः।**[3] भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना भक्ति है। परिणामों का निर्मल होना ही भक्ति का मूल उद्देश्य होता है। इसके लिए अरिहन्तादि पूज्य भगवन्तों के गुणों के स्मरण, अनुराग, साधना, उनकी प्राप्ति की भावना एवं बहुमान आदि अनेक माध्यम होते हैं। इनकी अभिव्यक्ति स्तुति, स्तव, संस्तव, वन्दना, स्तवन आदि से होती है।

संसारी प्राणी आराध्य के गुणों में अनुरक्त होता हुआ अपने समस्त पापों को नष्ट कर सुख प्राप्त करता हुआ मोक्ष की मंगल कामना करता है। स्तुति आदि की अनेक रचनाएँ हुईं, जिसमें **आचार्य समन्तभद्रस्वामी** का चतुर्विंशति तीर्थंकरों की स्तुति **'स्वयंभूस्तोत्र'** बहु प्रचलित है। इसके बाद बहुत स्तुतियाँ लिखी गईं, जो व्यक्तियों के नित्य-पाठ का विषय भी बनीं। इनकी रचनाओं पर तत्कालीन समय, प्रचलित छन्द एवं घटनाओं का प्रभाव भी रहा है।

कल्याण मंदिर स्तोत्र-

'कल्याणमंदिर स्तोत्र' 'भक्तामर स्तोत्र' की तरह अतिशय पूर्ण एवं भावात्मक भक्ति विषयक श्रेष्ठ काव्य है। इसकी भाषा और भाव से भक्ति रस निसृत होता है। प्रायः देखा जाता है कि संकट के समय जिन धर्म की प्रभावना के लिए जैनाचार्यों ने भक्तिमय काव्यों की रचना की है। जैसे- स्वयंभूस्तोत्र, कल्याणमंदिर स्तोत्र भक्तामर स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र, विषापहार स्तोत्र, शान्ति भक्ति आदि स्तोत्र रचे गए। चित्तौड़गढ़ में श्रीपार्श्वनाथ जैन मंदिर के द्वार खुलने के अवसर पर जो श्रद्धा प्रकट हुई इसी की भावधारा के शुभ परिणाम का आधार लेकर **श्री कुमुदचन्द्राचार्य महाराज** ने **भगवान पार्श्वनाथ** का स्तवन करके एक स्तम्भ से उनकी प्रतिमा प्रकटितकर जिनशासन की प्रभावना की थी। कवि श्रीवृन्दावन जी ने लिखा है -

श्रीमत् कुमुदचन्द्र मुनिवर सो वाद परयो जहाँ सभा मंझार।
तब ही श्री कल्याणधाम थुति श्री गुरु रचना रचि अपार।
तब प्रतिमा श्री पार्श्वनाथ की प्रगट भई त्रिभुवन जयकार।
सो गुरुदेव बसो उर मेरे विघ्न हरण मङ्गल करतार।

---

1. स्वयंभूस्तोत्र 86
2. भगवती आराधना 47
3. सर्वार्थसिद्धि 6/24

इस स्तोत्र में भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है अतः इसे '**पार्श्वनाथ स्तोत्र**' कहा जाता है। इसका प्रथम शब्द कल्याण होने से इसे कल्याण स्तोत्र कहते हैं। यह वसंततिलका छन्द में निबद्ध आध्यात्मिक भक्तिमय काव्य है। इसमें 44 काव्य हैं, इनमें किसी प्रकार की याचना नहीं की गई है। अपितु लेखक लिखते हैं कि–

जातोऽस्मि तेन जन बान्धव दुःख पात्रं,
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः। 38।[4]

अर्थात् मैंने भक्तिभाव से आपको अपने हृदय में कभी भी धारण नहीं किया इसलिए अब तक संसार में दुःख भोग रहा हूँ क्योंकि भाव रहित क्रिया फलदायक नहीं होती है।

लेखक व रचना काल :-

कल्याणमंदिर स्तोत्र के रचयिता श्री कुमुदचन्द्राचार्य हैं। अपर नाम श्री सिद्धसेन हैं। आप कवि एवं दार्शनिक मनीषी थे। कल्याणमंदिर स्तोत्र के रचना काल में अनेक मत मिलते हैं। कहीं 555 ई, 568 ई, एवं लगभग 12 वीं शताब्दी माना है जो शोध का विषय है।

स्तोत्र काव्यों में मंत्रों का प्रभाव :-

मुगल शासनकाल में जैन धर्मावलम्बियों को अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए तंत्र–मंत्र के द्वारा धर्म की प्रभावना दिखानी पड़ती थी। निकलंक जैसे सहोदर का बलिदान देकर आचार्य अकलंक देव ने धर्म की रक्षा के लिए अनेक शास्त्रार्थ किये। जहाँ हम चमत्कार नहीं दिखा पाये वहाँ हमारे धर्मायतनों को नष्ट किया गया। दसवीं शताब्दी के उपरान्त जैन धर्म का गौरव शनैः शनैः क्षीण होने लगा। मुगलों के आगमन के बाद सर्वत्र धर्म की हानि होने लगी अपने धर्म का निर्वाह करते हुए धार्मिक व्यक्तियों का जीवन भी उत्तरोत्तर कठिन हो गया।

मुनियों के लिए शास्त्र विहित चर्या का निर्दोष पालन दुष्कर होते होते असंभव हो गया तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी आते आते उत्तर भारत में दिगम्बर आचार्यों का विहार केवल पुराणकथाओं में ही शेष रह गया।[5] चौदहवीं शताब्दी में भट्टारकों का प्रथमपट्ट स्थापित हुआ।[6]

जिन धर्म की सुरक्षा व्यवस्था के लिये मंत्र तंत्र के द्वारा चमत्कार दिखाकर संस्कृति का आश्रय दिया जाने लगा। ऐसे समय में भक्तामर, कल्याण मंदिर जैसे प्रभावी स्तोत्रों के काव्यों को तंत्र मंत्र ऋद्धि मंत्रों से जोड़कर उनके द्वारा पूजा/आराधन आदि का प्रतिपादन किया गया जिसके फलस्वरूप 1484 ई. में स्तवन पूजा साहित्य में भट्टारक सोमसेन द्वारा भक्तामरोद्यापन की रचना की [10] और कल्याण मंदिर पूजा/विधान भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति द्वारा रचना की गई। जिसे आज भी हम भक्तामर पूजा/विधान एवं कल्याण मंदिर पूजा/विधान के रूप में जानते हैं। ये स्तोत्र भक्ति की अद्भुत रचना है इसके द्वारा भगवत् भक्ति में लीन होने से अनेक अतिशय होते हैं अतः इसके प्रत्येक काव्य को मंत्र–तंत्र और ऋद्धि मंत्र से जोड़ दिया गया और इन मंत्रों की साधना सिद्धि से आधि व्याधियाँ दूर करने का माध्यम बन गया।

---

4. कल्याण मंदिर 38 5.शान्तिसागर और भट्टारक परम्परा पृ. 20 6. भट्टारक – पृ. 5

बीजाक्षर और उनका स्वरूप-

अक्षर- खरणभावा अक्खरंकेवलणाणं।[7]

क्षरण अर्थात् विनाश का अभाव होने से केवलज्ञान अक्षर कहलाता है।

न क्षरतीत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात्।[8]

द्रव्य रूप से जिसका विनाश नहीं होता वह अक्षर है।

अक्षर के भेद - अक्षर के तीन भेद हैं- 1.लब्ध्यक्षर 2.निवृत्त्यक्षर 3.संस्थानाक्षर।

लब्ध्यक्षर - सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक से लेकर श्रुतकेवली तक जीवों के जितने क्षयोपशम होते हैं उन सबकी लब्ध्यक्षर संज्ञा है। जघन्य लब्ध्यक्षर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक के और उत्कृष्ट चौदहपूर्वधारी के होता है। 9 लब्धि अर्थात् श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम वा जानने की शक्ति के द्वारा अक्षर अर्थात् अविनाशी से ऐसा पर्याय ज्ञान ही है। इतना क्षयोपशम सदा काल विद्यमान रहता है।[10]

निर्वृत्त्यक्षर - जीवों के मुख से निकले हुए शब्दों की निर्वृत्त्यक्षर संज्ञा है। इसके व्यक्त और अव्यक्त ऐसे दो भेद हैं। व्यक्तनिर्वृत्त्यक्षर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों के होता है और अव्यक्तनिर्वृत्त्यक्षर द्विइन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तक के जीवों के होता है। जघन्यनिर्वृत्त्यक्षर द्विइन्द्रिय पर्याप्तक आदि जीवों के होता है और उत्कृष्ट चौदहपूर्वधारी के होता है।[11] कंठ, ओष्ठ, तालु आदि अक्षर बुलवाने के स्थान और ओंठों के मिलने से उत्पन्न शब्द रूप अकारादि स्वर, ककारादि व्यञ्जन और संयोगी अक्षर निर्वृत्त्यक्षर कहलाते हैं।[12]

संस्थानाक्षर - संस्थानाक्षर का दूसरा नाम स्थापनाक्षर है। यह वह अक्षर है इस प्रकार अभेद रूप से बुद्धि में जो स्थापना होती है या जो लिखा जाता है वह स्थापनाक्षर या संस्थानाक्षर है।[13] पुस्तकादि में निज देश की प्रवृत्ति के अनुसार अकारादि का आकार कर लिखना संस्थानाक्षर है।[14]

बीजाक्षर का लक्षण :-

संक्षिप्त शब्द रचना से सहित व अनन्त अर्थों के ज्ञान के हेतुभूत अनेक चिन्हों से संयुक्त बीजपद या बीजाक्षर कहलाता है।[15] एक मात्रा वाला वर्ण ह्रस्व, दो मात्रा वाला दीर्घ, तीन मात्रा वाला प्लुत और अर्ध मात्रा वाला वर्ण व्यञ्जन होता है।[16] वर्णाक्षर 25, अन्तस्थ 4, और ऊष्माक्षर 4 इस प्रकार तेतीस व्यञ्जन होते हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ इस प्रकार नौ स्वर अलग अलग ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के भेद से सत्ताईस होते हैं। अयोगवाह अं अः क और प ये चार ही होते हैं। इस प्रकार 64 अक्षर होते हैं।[17]

---

7. धवला 6, 1, 9
8. गोमट्टसार जीवकाण्ड 333
9. धवला 13, 5
10. गोमट्टसार जीवकाण्ड 333
11. धवला 13, 5
12. गोमट्टसार जीवकाण्ड 333
13. धवला 13, 5
14. गोमट्टसार जीवकाण्ड 333
15. धवला 9, 4
16. धवला १३,५
17. धवला 13, 5

बीजाक्षरों की उत्पत्ति-

बीजाक्षरों की उत्पत्ति प्रधानतः णमोकार मन्त्र से ही हुई हैं, क्योंकि मनुष्य का ध्वनियाँ इसी मन्त्र से उद्भूत हैं। इन सबमें प्रधान 'ओं' बीज है, यह आत्मवाचक मूलभूत है। इसे तेजीबीज, कामबीज और भवबीज माना गया है। पंचपरमेष्ठी वाचक होने से ओं को समस्त मन्त्रों का सारतत्त्व बताया गया है। इसे प्रणववाचक भी कहा जाता है। श्री को कीर्तिवाचक, ह्रीं को कल्याणवाचक, क्षीं को शान्तिवाचक, हं को मंगल वाचक, ह्रूँ को सुखवाचक, क्ष्वीं को योग वाचक, ह्रं को विद्वेष और रोषवाचक, प्रीं प्रीं को स्तम्भनवाचक और क्लीं को लक्ष्मी प्राप्तिवाचक कहा गया है। सभी तीर्थंकरों के नामाक्षरों को मंगल वाचक कहा गया है।[18]

मातृकामंत्र ध्वनियों के स्वर और व्यञ्जनों के संयोग से ही समस्त बीजाक्षरों की उत्पत्ति हुई है तथा इन मातृका मंत्रों की ध्वनियों की शक्ति ही मंत्रों में आती है। णमोकार मंत्र से ही मातृका ध्वनियाँ निसृत हैं। अतः समस्त मंत्र शास्त्र इसी महामंत्र से प्रादुर्भूत है।

मन्त्र का स्वरूप-

मन्त्र शब्द मन् धातु से ष्ट्रन अर्थात त्र प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। इस व्युपत्ति के अनुसार अर्थ होता है।

मन्यते ज्ञायते आत्मा देशोऽनेन इति मन्त्रः।

अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का आदेश-निजानुभव जाना जाये वह मन्त्र है। दूसरी तरह से तनादि गणीय मन् धातु से ष्ट्रन प्रत्यय लगाकर मन्त्र शब्द बनता है। इसका व्युपत्ति अर्थ है- मन्यते विचार्यते आत्मादेशोयेन सः मन्त्रः। अर्थात् जिसके द्वारा आत्मादेश पर विचार किया जावे वह मन्त्र है।[20] मन के साथ जिन ध्वनियों का घर्षण होने से दिव्य ज्योति प्रकट होती है, उन ध्वनियों के समूह को मन्त्र कहा जाता है।[21]

मन्त्र शक्ति और प्रभाव-

मन्त्रों से इच्छित कार्य की सिद्धी के लिए श्रद्धा, इच्छा शक्ति और दृढ़संकल्प ये तीनों परमावश्यक हैं। मन्त्र की ध्वनियों के संघर्षण द्वारा आध्यात्मिक शक्ति को उत्तेजित किया जाता है। इस कार्य में विचार शक्ति ही नहीं अपितु उत्कृष्ट इच्छा शक्ति के द्वारा ध्वनि संचालन की आवश्यकता होती है। मन्त्रशक्ति के प्रयोग की सफलता और मानसिक योग्यता प्राप्त करने के लिए नैष्ठिक आचार भी जरूरी होता है।

मन्त्र का बार-बार उच्चारण किसी सोते हुए को जगाने के समान है। मन्त्र शक्ति विद्युत प्रवाह के समान है तो विचार शक्ति स्विच के समान है। जब मन्त्र की पूर्ण विशुद्धि के साथ आराधना की जाती है तब आत्मिक शक्ति से आकृष्ट होकर देवता मान्त्रिक के समक्ष अपना

---

18. मंगल मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन पृष्ठ 52
20. मंगल मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन पृष्ठ 9
21. मंगल मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन पृष्ठ 51
22. मंगल मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन पृष्ठ 51

आत्मार्पण कर देता है, और उस देवता की सारी शक्ति उस मान्त्रिक में आ जाती है। मन्त्र साधक बीज मन्त्र और उनकी ध्वनियों के घर्षण से अपने भीतर आत्मिक शक्ति को जगाता है। मन्त्र के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने मन को प्रभावित कर सकता है।

मन्त्र की आराधना में ऐसी विद्युत शक्ति है जिससे व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व शान्त हो जाता है। नैतिक भावनाओं का उदय होता है,जिससे अनैतिक वासनाओं का दमन हो जाता है। मन्त्र के निरन्तर उच्चारण स्मरण और चिन्तन से आत्मा में एक प्रकार शक्ति उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा आत्मशोधन का कार्य तो ही है साथ ही अन्य आश्चर्यजनक कार्य भी होते हैं।[22]

मन्त्र निर्माण और बीजाक्षरों का प्रभाव-

बीजाक्षर, पिण्डाक्षर, तीर्थंकर के नाम एवं पल्लव आदि को मिलाकर मन्त्रों का निर्माण किया जाता है। मन्त्र निर्माण के लिए ॐ , ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रौं, ह्रः ह्रां हः सः क्लीं क्लैं द्रां द्रीं द्रं द्रः श्रीं क्षीं क्ष्वीं हूँ अं फट् वषट् संवौषट् घे घै यः ठः खः ह्म्ल्व्र्यूं पं वं यं झं तं थं दं आदि बीजाक्षरों की आवश्यकता होती है। इनमें ऐसी शक्ति अन्तर्निहित रहती है, जिससे आत्म शक्ति या देवताओं को उत्तेजित किया जा सकता है। ये बीजाक्षर अन्तःकरण और वृत्ति की शुद्ध प्रेरणा के व्यक्त शब्द हैं जिनसे आत्मिक शक्ति का विकास किया जा सकता है।[23]

अलग-अलग मन्त्रों के प्रभाव, फ ल,एवं शक्ति भी भिन्न-भिन्न होती है जैसे- ॐ ब्रह्मबीज या तेजोमयबीजमन्त्र है। ऐं वाग्भाव बीजा, लृं कामबीज, क्रों शक्तिबीज, हं सः बिषापहार बीज, क्षीं पृथ्वी बीज, स्वा वायुबीज, हा आकाशबीज, ह्रां त्रैलोक्यनाथबीज, फट् विसर्जन या चालन बीज, वौषट् पूजा ग्रहण, संवौषट् आमंत्रणार्थक, ब्लूं द्रावण, ह्रीं महाशक्ति वाचक, वषट् आह्वान वाचक, रं ज्वलन वाचक, क्ष्वीं बिषापहार बीज,ठः चन्द्रबीज,घे घै ग्रहण बीज, द्रं विद्वेषणार्थक, स्वाहा शान्ति और हवन वाचक, स्वधा पौष्टिकवाचक, नमः शोधन बीज, क्ष्वीं भोग बीज, हूं दण्डबीज, क्लीं धनबीज,तीर्थंकर के नामाक्षर शान्तिबीज, ह्रौं ऋद्धि-सिद्धी बीज,ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रौं, ह्रः सर्व शान्ति मांगल्य, कल्याण, विघ्नविनाशक, सिद्धिदायक, संशोधनबीज,क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः सर्व कल्याण, सर्वशुद्धि बीज,वं द्रवण, यं मंगल बीज, सं शोधन बीज, यं रक्षा बीज, झं शक्ति बीज, एवं तं थं दं कालुष्य नाशक मंगलवर्धक और सुखकारक हैं।[24] इन बीजाक्षरों को इनकी शक्ति एवं प्रभाव के अनुसार मन्त्रों में समाहित किया जाता है, जिससे मन्त्र आराधक को समुचित फल की प्राप्ति होती है।

बीजाक्षरों की निष्पत्ति के संबंध में बताया गया है कि

हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तयईरिताः ॥ 377 ॥[25]

ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यञ्जन बीज संज्ञक हैं और अकारादि स्वर शक्ति रूप हैं। बीज मंत्रों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है।

---

23. मंगल मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन पृष्ठ 52, 54
24. मंगल मन्त्र णमोकार एक अनुचिन्तन पृष्ठ 53
25. प्रतिष्ठा पाठ आचार्य जयसेन स्वामी 377

पिण्डाक्षर – पिण्ड अर्थात् समूह, अनेक बीजाक्षरों के समूह से पिण्डाक्षर बनते हैं। पिण्डाक्षरों से युक्त मंत्रों का अचिन्त्य फल होता है। ह्म्ल्व्र्यूं भ्म्ल्व्र्यूं आदि पिण्डाक्षर हैं।अक्षर, बीजाक्षर और पिण्डाक्षर के साथ ऋद्धि मंत्रों का संयोग अद्भुत परिणाम देता है।

'**कल्याणमंदिर स्तोत्र**' के समस्त काव्य ही नहीं प्रत्येक शब्द, अक्षर जहाँ स्वयं मंत्र स्वरूप है वहीं उन्हें बीजाक्षर आदि के संयोग अत्यधिक शक्तिशाली बनाता है। **आर्यिकारत्न पूर्णमति माता जी** ने कल्याणमंदिर स्तोत्र के सभी अक्षरों की पृथक्-पृथक् आराधना कर कल्याणमंदिर स्तोत्र की महिमा को प्रकट किया है।

प्रस्तुत कृति – इस कल्याणमंदिर विधान की रचना अध्यात्मयोगी अनियत विहारी संत शिरोमणी **आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज** की परम शिष्या कवि हृदय, अध्यात्म साधिका, **आर्यिकारत्न पूर्णमति माता जी** ने की है। यह विधान भक्तिरस से ओतप्रोत तो है ही साथ ही जैनागम के लगभग सभी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले एवं काव्य कौशल के अद्भुत उदाहरण हैं। इस विधान में जहाँ आराध्य के गुणानुवाद को महत्त्व दिया है वहीं वस्तु स्वरूप, सदाचरण, ज्ञान, चारित्र, दर्शन, सिद्धान्त के साथ अपने मनोभाव और भक्ति के फलस्वरूप स्वर्ग मोक्षादि की प्राप्ति की कामना की है। कुछ छन्द दृष्टव्य हैं-

शुद्धोऽपि मैं दुःख पाता, भव दुःख अब सहा न जाता।
हूँ शुद्ध स्वयं निश्चय से, दुख पाता व्यवहारिक से ॥ 238 ॥
कर्त्ता पर का बन करके, भोगे संकट मर-मर के।
अब आप कृपा से जाना, निज का कर्त्ता पहचाना ॥ 239 ॥
तुम्बी तैरे ज्यों जल में, हो लेप नहीं जब उसमें।
कर्मों का लेप छुड़ा दो, प्रभु निज सम मुझे बना दो ॥ 240 ॥

इस प्रकार सरल शब्दों में जैनागम के सिद्धान्तों को छन्दों में निबद्ध कर पाठकों श्रोताओं एवं विधान कर्त्ताओं के ज्ञान वृद्धि तो की ही है साथ ही परिणामों में विशुद्धि का हेतु भी प्रस्तुत किया है।

आराधना के शब्दों का अभिप्राय समझ में आना परिणामों में विशुद्धि का कारण बनता है। यह विशुद्धि भव्यजनों का भक्ति-मार्ग प्रशस्त करती है, जो प्राणी-मात्र को कर्मक्षय और पुण्यार्जन का सशक्त माध्यम है, अतः यह कृति पठनीय ही नहीं अपितु संग्रहणीय एवं अनुकरणीय भी है।

अनुक्रमणिका

क्र०सं०	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मङ्गलाष्टक	17
2.	विनय पाठ	19
3.	नित्य पूजा पीठिका	21
4.	परमर्षि स्वस्ति मङ्गल पाठ	24
5.	नव देवता पूजन	25
6.	श्री कल्याण मन्दिर महामण्डल विधान प्रारम्भ	30
7.	आचार्य परमेष्ठी श्री विद्यासागरजी महाराज की पूजन	387
8.	अर्घ्यावली	390
9.	महार्घ्य	393
10.	शान्तिपाठ	394
11.	विसर्जन	395
12.	आ. गुरुवर श्री विद्यासागर जी महा. की अमृतवाणी	399

कल्याण मन्दिर महामण्डल विधान

माण्डना

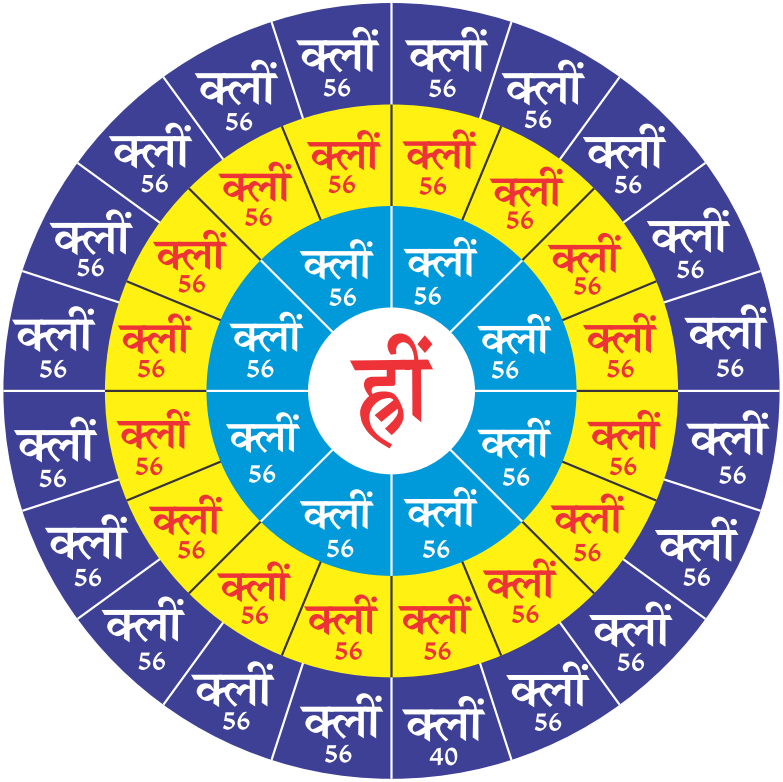

मङ्गलाष्टकम्

(सर्वप्रथम मङ्गलाष्टक पढ़ें व अभिषेक एवं पूजन की सामग्री व्यवस्थित करें)

श्रीमन्नम्र- सुरासुरेन्द्र- मुकुट- प्रद्योत- रत्नप्रभा-
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन- सिद्ध- सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥1॥

नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवन-ख्याताश्चतुर्विंशतिः
श्रीमन्तो भरतेश्वर - प्रभृतयस्तैश्यचक्रिभिः पूजिताः।
ये विष्णु- प्रतिविष्णु- लाङ्गलधराः तैरेव संपूजिता
त्रैलोक्ये प्रथिताः सुतीर्थ-पुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥2॥

ये सर्वौषधि- ऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगताः पञ्च ये
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्त-कुशलाश्चाष्टौ विधाश्चारणाः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः
सप्तैते सकलाश्च ते मुनिवराः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥3॥

ज्योतिर्व्यन्तर- भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः
जम्बूशाल्मलि- चैत्यशाखिषु तथा वक्षार रूप्याद्रिषु।
इक्ष्वाकार- गिरौ च कुण्डल- नगे द्वीपे च नन्दीश्वरे
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-गृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥4॥

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे
चम्पायां वसुपूज्य- सज्जिनपतेः सम्मेद- शैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्त-शिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो
निर्वाणावनयः प्रसिद्ध विभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥5॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥6॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुर- प्रवेश- महिमा सम्पादितः स्वर्गिभिः
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥7॥

इत्थं श्रीजिन- मंगलाष्टकमिदं सौभाग्य सम्पत्प्रदं
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनै- र्धर्मार्थ- कामान्विता
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय- रहिता निर्वाण- लक्ष्मीरपि॥8॥

॥इति श्री मंगलाष्टकस्तोत्रम्॥

विद्यासागर-विश्व-वन्द्य-श्रमणं भक्त्या सदा संस्तुवे
सर्वोच्चं यमिनं विनम्य परमं सर्वार्थ-सिद्धि-प्रदम्।
ज्ञान-ध्यान-तपोभिरक्त मुनिपं विश्वस्य विश्वाश्रयं
साकारं श्रमणं विशाल हृदयं सत्यं शिवं सुन्दरम्॥

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़े जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ॥1॥
अनन्त चतुष्टय के धनी,तुम ही हो सिरताज।
मुक्ति-वधू के कन्त तुम, तीन भुवन के राज॥2॥
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि- शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार॥3॥
हरता अघ अंधियार के, करता धर्म-प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो, धरता निज गुण रास॥4॥
धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को,नावत तिहुँ जग भूप॥5॥
मैं वन्दों जिनदेव को, करि अति निरमल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछू उपाव॥6॥
भविजन को भव-कूपतैं, तुम ही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण भण्डार॥7॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में,भविजन को शिवगैल॥8॥
तुम पद-पङ्कज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय॥9॥
चक्री खगधर इन्द्र पद, मिलें आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहें,नेम सकल हनि पाप॥10॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥11॥
पतित बहुत पावन किए, गिनती कौन करेव।
अञ्जन से तारे कुधी, जय-जय-जय जिनदेव॥12॥
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेव।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय-जय-जय जिनदेव॥13॥
राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव॥14॥

कित निगोद कित नारकी ,कित तिर्यञ्च अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥15॥
तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥16॥
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव सिन्धु में, खेव लगाओ पार॥17॥
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजे आप समान॥18॥
तुमरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा-हा डूब्यो जात हों, नेक निहार निकार॥19॥
जो मैं कह हूँ और सों, तो न मिटे उर झार।
मेरी तो तोसों बनी, यातैं करौं पुकार॥20॥
वन्दों पाँचों परमगुरु, सुरगुरु वन्दत जास।
विघनहरन मङ्गलकरन, पूरन परम प्रकाश॥21॥
चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय॥22॥
मङ्गल मूरत परम पद, पञ्च धरो नित ध्यान।
हरो अमङ्गल विश्व का, मङ्गलमय भगवान॥23॥
मङ्गल जिनवर पद नमों, मङ्गल अर्हन्त देव।
मङ्गलकारी सिद्ध पद, सो वन्दों स्वयमेव॥24॥
मङ्गल आचारज मुनि, मङ्गल गुरु उवज्झाय।
सर्व साधु मङ्गल करो, वन्दों मन-वच-काय॥25॥
मङ्गल सरस्वती मात का, मङ्गल जिनवर धर्म।
मङ्गलमय मङ्गल करो, हरो असाता कर्म॥26॥
या विधि मङ्गल से सदा, जग में मङ्गल होत।
मङ्गल 'नाथूराम' यह, भवसागर दृढ़ पोत॥27॥

अथ अर्हत्-पूजा-प्रतिज्ञायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तव-समेतं पञ्चमहागुरुभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूजा की प्रतिज्ञा करते हुए नौ बार णमोकार-मन्त्र का विधिपूर्वक ध्यान करें)

ॐ

नित्य पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

चत्तारि मंगलं अरहंत मंगलं सिद्ध मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरहंत लोगुत्तमा सिद्ध लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि सिद्ध सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पञ्च-नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते॥1॥
अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥2॥
अपराजितमंत्रोऽयं, सर्व-विघ्नविनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मङ्गलं मतः॥3॥
एसो पंच-णमोयारो,सव्वपावप्पणासणो।
मङ्गलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मङ्गलं॥4॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम्॥5॥
कर्माष्टक- विनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्॥6॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥7॥

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

पञ्चकल्याणक अर्घ्य

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्-चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवलमङ्गलगान- रवाकुले, जिनगृहे कल्याणमहं यजे॥1॥

ॐ ह्रीं भगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण-पञ्चकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चपरमेष्ठी का अर्घ्य

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्-चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवलमङ्गलगान- रवाकुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजे॥2॥

ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्-चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवलमङ्गलगान- रवाकुले, जिनगृहे जिननाम यजामहे॥3॥

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनाष्टोत्तरसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी का अर्घ्य

उदक-चन्दन-तण्डुल पुष्पकैश्-चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवलमङ्गलगान- रवाकुले, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे॥4॥

ॐ ह्रीं स्याद्वाद-नय गर्भित-सम्पूर्ण-जिनसूत्रायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं
स्याद्वादनायक मनन्तचतुष्टयार्हम्
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्
जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि॥1॥
स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय
स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्ज्जितदृङ्मयाय
स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुत-वैभवाय॥2॥

स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्‌गमाय
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय॥3॥
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्यवल्गन्
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम्॥4॥
अर्हन् पुराणपुरुषोत्तमपावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव
अस्मिञ्ज्वलद्विमल-केवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि॥5॥

ॐ विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

स्वस्ति-मंगल

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः॥
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः॥
श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः॥
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मःस्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः॥
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः॥
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः॥

(इति चतुर्विंशतिजिनेन्द्रस्वस्तिमंगलविधानम्। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।)

परमर्षि स्वस्ति मङ्गल पाठ

(प्रत्येक श्लोक के अन्त में पुष्पाञ्जलि क्षेपण करें)

नित्याप्रकम्पाद्भुतकेवलौघाः, स्फुरन्मनः-पर्ययशुद्धबोधाः।
दिव्यावधि-ज्ञानबलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

कोष्ठस्थ-धान्योपममेक-बीजं, संभिन्न-संश्रोतृपदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादन-घ्राण- विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहंतः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः,प्रत्येक-बुद्धाः दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाः,स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

जंघानलश्रेणि-फलाम्बु-तन्तु,प्रसून-बीजाङ्कुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गणस्वैरविहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

अणिम्नि दक्षाःकुशला महिम्नि,लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपु-वाग्बलिनश्च नित्यं,स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं, प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोर-पराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशीर्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः,स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो, मधुस्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

(इति परमर्षिस्वस्तिमङ्गलविधानं परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

नवदेवता पूजन

स्थापना

गीता छन्द

अरि चार घाति विनाश कर, अरहन्त पद को पा लिया।
पुरुषार्थ प्रबल किया प्रभो, मुक्तीरमा को वर लिया॥
अरहन्त पथ पर चल रहे, आचार्य पद वन्दन करूँ।
उवज्झाय साधु श्रेष्ठ पद का,भक्ति से अर्चन करूँ ॥1॥
जिन धर्म आगम चैत्य चैत्यालय शरण को पा लिया।
भव-सिन्धु पार उतारने, नौका सहारा ले लिया॥
यह भावना मेरी प्रभो, मम ज्ञान महल पधारिए।
निज सम बना लीजे मुझे, जिनराज पदवी दीजिए॥2॥

दोहा

सुख दाता नव देवता, तिष्ठो हृदय मँझार।
भावों से आह्वान करूँ, करो भवोदधि पार॥3॥

ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयसमूह !
अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम् ।
ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयसमूह !
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् ।
ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयसमूह!
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम् ।

द्रव्यार्पण

(तर्ज - माता तू दया करके .....)

जिनको अपना माना, उनसे ही दुख पाया।
फिर भी क्यों राग किया, यह समझ नहीं आया॥
यह राग की आग मिटे, ऐसा जल दो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥1॥

ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्म-जिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो
जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं.... ।

प्रभो ! काल अनादि से, भव का संताप सहा।
अब सहा नहीं जाता, यह मेटो द्वेष महा॥
इस द्वेष की ज्वाला को, अब शान्त करो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥2॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं....।

जिसको मैंने चाहा, सब नश्वर है माया।
जिस तन में हूँ रहता, क्षणभंगुर वह काया॥
क्षत-विक्षत जग सारा, अब जाऊँ कहाँ स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥3॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्....।

इस काम लुटेरे ने, आतम धन लूट लिया।
मैं मौन खड़ा निर्बल, बस तेरा शरण लिया॥
विश्वास मुझे तुम पर, आतम बल दो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥4॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं....।

इस क्षुधा रोग से मैं, प्रभुवर लाचार रहा।
व्यंजन की औषध खा, ना कुछ उपचार हुआ॥
प्रभु तू ही सहारा है, यह रोग नशे स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥5॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं....।

पर तत्त्व प्रशंसा में , महिमा पर की आई।
नर तन में रहकर भी, निज की ना सुध आई॥
अब ज्ञान ज्योति प्रकटे, आशीष मिले स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥6॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं....।

कर्मों की आँधी में, चेतन गृह बिखर गया।
आया अब दर तेरे, निज आतम निखर गया॥
शुभ ध्यान अनल में ही, वसु कर्म जले स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥7॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं....।

पापों का बीज बोया, कैसे शिव फल पाऊँ।
तप धारूँ कर्म नशे, तब सिद्धालय पाऊँ॥
मुझे पास बुला लेना, यह अरज सुनो स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥8॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं....।

वसु कर्मों ने मिलकर, दिन-रात जलाया है।
गुरुदेव कृपा पाकर, यह अर्घ्य बनाया है॥
यह पद अनर्घ्य अनमोल, हो प्राप्त मुझे स्वामी।
नव देव शरण आया, शरणा दो जगनामी॥9॥

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं....।

-:: जाप्य ::-

(ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो नमः)

जयमाला

दोहा

नव देवों की भक्ति से, सब अरिष्ट नश जाए।
आत्मसिद्धि को प्राप्त कर, अष्टम वसुधा पाए॥1॥

चौपाई

जय अरहन्त देव जिनराई, तीन लोक में महिमा छाई।
घाति कर्म चउ नाश किए हैं, भव्य जनों में वास किए हैं॥2॥

दोष अठारह दूर किए हैं, छयालीस गुण पूर्ण हुए हैं।
समवसरण के बीच विराजे, तीर्थङ्कर पद महिमा राजे॥3॥

क्षणभंगुर सारा जग जाना, जड़ चेतन को भिन्न पिछाना।
कल्याणक सब पंच मनाए, देव इन्द्र हर्षित गुण गाए॥4॥

प्रभो! आपने प्रभुता पायी, दो हमको समता सुखदायी।
दुष्ट करम ने मुझको घेरा, निज स्वभाव से मुख को फेरा॥5॥

प्रभो! आप सिद्धालय वासी, दर-दर भटका मैं जगवासी।
अब निज भूल समझ में आई, सिद्धदशा ही मन में भाई॥6॥

करो नमन स्वीकार हमारा, भवसागर से करो किनारा।
कर्म भँवर में मेरी नैया, गुरुवर तुम बिन कौन खिवैया॥7॥

गुण छत्तीस मुनीश्वर धारे, इस कलयुग में आप सहारे।
दीक्षा देकर राह दिखाते, खुद चलते चलना सिखलाते॥8॥

उपाध्याय पद है तम नाशे, गुण पच्चीस ज्ञान परकासे।
अट्ठाईस गुणों के धारी, साधू पद की महिमा भारी॥9॥

श्री जिनधर्म अहिंसा प्यारा, गूँज उठा है जग में नारा।
आगम आतम बोध कराता, फिर चेतन का शोध कराता॥10॥

जिनने आगम को अपनाया, अहो भाग्य तुम सा पद पाया।
अनेकान्त मय धर्म सहारा, द्वादशांग को नमन हमारा॥11॥

कर्म निकाचित् निधत्ति विनाशे बिम्ब जिनेश्वर आत्म प्रकाशे।
निज स्वरूप का बोध कराती, जिन सम जिनमूरत कहलाती॥12॥

जो जन नित जिन मन्दिर जावें, पाप नशें औ पुण्य बढ़ावें।
परमातम का ध्यान लगावें, शुद्ध होय मुक्तीपुर जावें॥13॥

नव देवों को शीश झुकाऊँ , गुण गाऊँ और ध्यान लगाऊँ।
रहूँ सदा मैं प्रभुवर चरणा,भव-भव मिले आपकी शरणा॥14॥

दोहा

पूर्व पुण्य से हो रहा, नव देवों का दर्श।
अल्प बुद्धि कैसे लहे, अनन्त गुण का स्पर्श॥15॥

ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो जयमाला-पूर्णार्घ्यं ....।

घत्ता

प्रभुवर को पूजे, शिवपथ सूझे, भव-भव का संताप हरो।
नित पूज रचाऊँ, ध्यान लगाऊँ, 'विद्यासागर पूर्ण' करो॥

॥इत्याशीर्वादः॥

ॐ

मङ्गलाचरण

दोहा

करुणासागर नाथ के, चरणों में मम माथ।
हूँ अनाथ मैं पार्श्वजिन, मुझको करो सनाथ॥ 1॥

ज्ञानोदय छन्द

अनन्त गुण से पूरित जिनवर, सर्व विश्व में व्याप्त हुए।
विभाव क्षय कर हुए स्वयंभू, वीतराग प्रभु आप्त हुए॥
नभ से उन्नत गुण वल्लरियाँ, पर्वत से भी उन्नत हैं।
सागर से भी गहरे गुण हैं, सुर नर यति मुनि भी नत हैं॥ 2॥
जब-जब तुमको ध्याया भगवन्, कर्म शत्रु भी शान्त हुआ।
साहस जागा अन्तर्मन में, आतम में आनन्द हुआ॥
सर्व प्रियङ्कर परम हितङ्कर, प्रभु तुमको सब कुछ माना।
नाथ आपकी भक्ति करके, सच्चा शिवपथ पहचाना॥ 3॥
''कुमुदचन्द्र स्वामी'' ने निज में,श्रद्धा ज्योति जलाई है।
पार्श्वप्रभु को हृदय बसाकर, अतिशय महिमा गाई है॥
पाप रूप जो कर्मसर्प है, उसका क्षय निश्चित होता।
दूर असाता होता पल में, विकार मल को भी धोता॥ 4॥
अपनी लघुता प्रातिहार्य औ, प्रभु प्रभाव को बतलाया।
वर्णन है उपसर्ग कमठ का, भक्ति का फल समझाया॥
इस विधान को जो भी भविजन, तीन योग से करते हैं।
रोग शोक भय संकट क्षयकर, शुद्धातम में रमते हैं॥ 5॥

श्री कल्याण-मन्दिर विधान प्रारम्भ

स्थापना

शम्भु छन्द

जय-जय चिन्मय चैतन्य धाम,श्री पार्श्वनाथ को वन्दन है।
करुणासागर कल्याणधाम, प्रभु अश्वसेन के नन्दन हैं॥
श्यामल तेजोमय मूरत लख, आनन्द बरसता रहता है।
प्रत्यक्ष आपके दर्शन को, यह भक्त तरसता रहता है॥1॥
हे नाथ आपका संगम पा, कमठासुर का मन पलट गया।
प्रभुवर की दिव्यध्वनि सुनकर, सारा जीवन ही बदल दिया॥
आह्वान करूँ मन वच तन से, प्रभु हृदयासन पर आ जाओ।
समता का झरना बहा सकूँ, अब वीतराग छवि दर्शाओ॥2॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं-महाबीजाक्षरसम्पन्न श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! ममहृदये अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं-महाबीजाक्षरसम्पन्न श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! ममहृदये अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं-महाबीजाक्षरसम्पन्न श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! ममहृदये अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

द्रव्यार्पण

ज्ञानोदय छन्द

समता जल का झरना झरता, पारस प्रभुवर के मन में।
जन्म जरादिक त्रय का प्रभु ने, नाश किया है पलभर में॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
स्वानुभूति का समरस चखने, उदक चढ़ाने लाया हूँ॥1॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं....।

दस भव तक तो क्रूर कमठ ने, द्वेष अनल को बरसाया।
भव सन्ताप क्षयङ्कर प्रभु के, मन को नहीं डिगा पाया॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
शीतलता को पाने भगवन्, चन्दन लेकर आया हूँ॥2॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं....।

अक्षय आतम तत्त्व जानकर, अखण्ड पद को प्राप्त किया।
नश्वर तन जड़ धन वैभव को,तजकर निज में वास किया॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
अनुपम स्वाश्रित सुख को पाने, अखण्ड अक्षत लाया हूँ॥3॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्....।

अठदश सहस शील के स्वामी, आत्म ब्रह्म रस पीते हैं।
जग में रहकर भी इस जग से, न्यारे होकर जीते हैं॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
ब्रह्मचर्य व्रत अखण्ड पाने, दिव्य सुमन को लाया हूँ॥4॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वन्सनाय पुष्पं....।

चउ गतियों में क्षुधा व्याधि से, पीड़ित सब संसारी हैं।
अभेद रत्नत्रय के द्वारा, आप हुए अविकारी हैं॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
चारों संज्ञा का क्षय करने, नेवज लेकर आया हूँ॥5॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं....।

अपूर्व अनबुझ दीप जलाया, कभी नहीं बुझने वाला।
तीन लोक को एकसाथ ही, पूर्णज्ञान जाननहारा॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
पूर्णज्ञान ज्योति को पाने, दीपक कर में लाया हूँ॥6॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं....।

निमित्त से ना हुए प्रभावित, समीचीन पुरुषार्थ किया।
अष्ट कर्म को जला-जलाकर, निजानन्द का स्वाद लिया॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
सर्व विभाव विकार मिटाने, धूप चढ़ाने लाया हूँ॥7॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं....।

हुए आप कृतकृत्य जिनेश्वर, विधि फल की ना आश रही।
रत्नत्रय तरु पर शिवफल पा, पहुँचे अष्टम मोक्ष मही॥

पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
कर्म फलों से पीड़ित होकर, चरणन श्रीफल लाया हूँ॥ 8॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं....।

भव ही भय का स्थान रहा है, प्रभु चरणों में अभय मिला।
अनर्घ्य पदधारी प्रभु को लख, मुरझाया मन कमल खिला॥
पार्श्वनाथ कल्याणधाम की, पूजन करने आया हूँ।
कर्म कमठ पर जय पाने प्रभु, अर्घ्य बनाकर लाया हूँ॥ 9॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं....।

पंच कल्याणक

सखी छन्द

वैशाख कृष्ण दिन पावन, द्वितीया तिथि है मनभावन।
प्रभु प्राणत स्वर्ग से आए, छप्पन देवी गुण गाएँ॥ 1॥
ॐ ह्रीं वैशाखकृष्ण द्वितीयायां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

वदी पौष ग्यारसी आई, शुभ जन्म लिया जिनराई।
वाराणसी नगरी प्यारी, प्रभु जन-जन के मनहारी॥ 2॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

जन्मोत्सव खुशियाँ छाईं, तब जाति स्मृति हो आई।
जिन दीक्षा ली सुखकारी, भवि जीवों को हितकारी॥ 3॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

वदी चैत्र चतुर्थी आई, प्रभु पूर्णज्ञान द्युति पाई।
हुई समवसरण की रचना, सुर-नर पशु सुनते वचना॥ 4॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

दिन मुकुट सप्तमी आया, श्रावण शुक्ला दिन भाया।
छत्तीस संग मुनिराया, प्रभु मुक्त हुए शिवराया॥ 5॥
ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।